04 सशक्तिकरण के लिए नई सोच

सुधा महेश

"हम यदि आज के बच्चों को भी वैसे ही पढ़ाते हैं जैसे कल के बच्चों को पढ़ाते थे, तो फिर हम उन्हें आने वाले कल से वंचित कराते हैं।"

– जॉन ड्युई

बच्चों की माँगें हजार और वे भी लगातार बदलती रहती हैं – सामान्य से विशिष्ट और साझी से निजी होती हुई। असीम जिज्ञासा, जबर्दस्त कल्पनाशीलता, ऐन पड़ोस को सिरे से छान मारने में गहरी रुचि, सोखते सरीखी ग्रहणशीलता, पसन्दीदा विषय में टिकाऊ एकाग्रता, धाराप्रवाह सवाल, शारीरिक ऊर्जा और बच्चों के अनेक ऐसे गुण मुझे हमेशा हैरत में डालते हैं। तब मैं सोचने लगती हूँ कि इतनी नन्ही जानों में कैसे क्या इतनी सारी जीवन्तता समाती है।

मैं देखती हूँ कि विद्यार्थी जब अपनी रुचियों में रमते हैं तब उनकी एक स्वतंत्र अस्मिता या उनका एक 'आत्मबोध' अस्तित्व में आता है। और यह बात सारे बच्चों पर लागू होती है – छोटे हों या बड़े, या फिर वे किसी भी पृष्ठभूमि से क्यों न आए हों। यदि उन्हें बौद्धिक क्षमता और अद्वितीय सामर्थ्य के विकास के अनुकूल वातावरण और अनेकानेक अवसर प्रदान किए जाएँ, तो निश्चित ही उनमें जीवन–कौशल विकसित होंगे, क्योंकि वे जो कुछ भी करते या सीखते हैं उसका उनके भविष्य पर प्रभाव पड़ता है।

यह मेरे इस विश्वास को और भी बल प्रदान करता है कि विद्यार्थियों को एक अध्यापक की नहीं, मददगार मित्र की जरूरत होती है जो सीखने की प्रक्रिया में उनका मार्गदर्शक बन सके। अपनी पहली नौकरी शुरू करते समय मुझे इस बात का जरा भी अहसास न था कि मुझे अनिवार्य रूप से गणित पढ़ाने को कहा जाएगा। मुझे तो धुकधुकी होने लगी। मुझे याद आया कि मैं तो कभी गणित की अच्छी विद्यार्थी नहीं रही। नई अवधारणाएँ जानने और दैनिक जीवन के हिसाब से उनकी प्रासंगिकता समझने में मुझे कुछ वक्त लगा। थोड़ा रुककर सोचने पर मुझे यह समझ आया कि आमतौर पर अध्यापन पारम्परिक 'चॉक ऍण्ड टॉक' विधि का इस्तेमाल करने वाली अध्यापक–केन्द्रित प्रक्रिया रही आई है जिसमें बच्चों को बस अच्छे नम्बर पाने लायक ज्ञान जुटाने सम्बन्धी हिदायतें दी जाती हैं। लेकिन यह विधि यह बात न समझ सकी कि सीखने का माध्यम दृश्य, श्रव्य और गतिबोधक भी हो सकता है। सो 'चॉक ऍण्ड टॉक' का तरीका तो मेरे काम न आया। सोचा तो पाया कि मुझे अपने पढ़ाने के ढंग में कौशल–निर्माण को शामिल करना पड़ेगा ताकि बच्चों को सीखने में मजा आए। बस फिर क्या था, मैंने ऐसी कई रचनात्मक तकनीकें अपने पढ़ाने के ढंग में शामिल कीं, जिनका सारा फोकस बच्चों में समस्या–समाधान और विवेचनात्मक चिन्तन के कौशल विकसित करने पर था।

मुझे यह भी समझ में आया कि इसके लिए विद्यार्थी की मानसिक तैयारी बड़ी जरूरी है, और यह तैयारी उनकी समय–आधारित उम्र पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनकी ग्रहणशीलता बढ़ाने के लिहाज से उन्हें मिलने वाले प्रत्यक्ष ज्ञान पर निर्भर करती है। सारे अध्यापकों के लिए इस अन्तर को समझना बड़ा जरूरी है। कोई भी, कुछ भी सीख सकता है। सीखने की कोई उम्र नहीं होती।

ज्योंही मैंने यह जाना, त्योंही गणित में मुझे मजा आने लगा। मजा भी इतना कि मैं कैम्ब्रिज के लिए किताबें तक लिखने लगी।

क्षमताओं के अलावा, बच्चों के लिए यह जानना भी जरूरी है कि जिस समाज में वे रहते हैं उसमें होने वाली चीजें होती क्या, क्यों और कैसे हैं और इसी समाज को उन्हें लौटाना भी तो है आखिर। समाज कोई ऐसा अखाड़ा तो है नहीं कि जहाँ लोग आएँ, अपनी क्षमताओं, प्रतिभाओं का प्रदर्शन करें ताकि हम जानें कि कौन बेहतर है। दरअसल, समाज तो विविध प्रकार की रुचियों, विचारों, मतों, सीमाओं और निराशाओं का नित–बदलता एक शक्ति–सन्तुलन है। हमारी शिक्षा समाज के इस सन्तुलन को पहचानने में हमारे विद्यार्थियों की मददगार होनी चाहिए, न कि महज उनकी शैक्षणिक योग्यताएँ बढ़ाने की कोई विधि। किसी व्यक्ति को तब तक सफल नहीं माना जाता जब तक वह एक साक्षर व्यक्ति के बतौर सबसे अलग–थलग खड़ा रहता है, उसे सफल तभी माना जाता है जब वह संवेदनशील होकर मार्गदर्शन करने वाले किसी समूह के साथ नहीं जुड़ जाता, फिर चाहे उस समूह में शामिल व्यक्तियों की निपुणताएँ, कमजोरियाँ और योग्यताएँ कुछ भी क्यों न हों। सार्वभौमिक सत्य यही है कि हम यदि अपने बच्चों को उनके अपने दोस्तों के साथ घुलमिल जाने और उनको स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं करेंगे तो आगे चलकर उन्हें बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है।

जीवन–कौशलों पर आधारित शिक्षा की जरूरत को लेकर बढ़ी हुई जागरूकता के चलते आज हम एक दुविधा में हैं। यह बड़ा जरूरी है कि हमारे विद्यार्थी आने वाले कल के जीवन और समाज की माँगों और चुनौतियों का सामना कारगर ढंग से करने के योग्य बन सकें।

मेरे निजी अनुभवों और विद्यार्थियों को काबिल बनाने सम्बन्धी मेरी प्रबल धारणाओं के चलते मैं हमारे स्कूल की पाठ्यचर्या में अध्यापन के रचनात्मक तरीकों का भरपूर इस्तेमाल करते हुए कौशल–आधारित अध्यापन/अध्ययन कार्यक्रम चला सकी। इसे आसान बनाने के लिए ज्ञान को निम्न स्तर के कौशल व उच्च स्तर के कौशल में बाँटते हुए हम सीखने के उद्देश्यों का वर्गीकरण करते हैं। सो ज्ञान, समझ और प्रयोग को ग्रहण करने को हम निम्न स्तर के कौशल मानते हैं जबकि विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन कर सकने की योग्यता को हम उच्च स्तर के कौशलों की तरह बरतते हैं। एक ओर जहाँ निम्न स्तर के कौशल होना अपरिहार्य है, वहीं हर बच्चे को सक्षम बनाने की दृष्टि से उसे उच्च स्तर के कौशलों से लैस करना भी जरूरी है।

कोई पूछ सकता है कि रचनात्मक अध्यापन भला क्या होता है। मेरे हिसाब से तो कोई भी अध्यापन जो वक्ता के विचारों को बिना किसी कठिनाई के स्पष्ट रूप से श्रोता तक पहुँचा सकता है और उसे ज्ञात और अज्ञात परिस्थितियों में अपने अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने के काबिल बना सकता है वह अध्यापन, रचनात्मक अध्यापन है। ऐसी शिक्षा न केवल उस विद्यार्थी का स्तर ऊपर उठाएगी बल्कि उसके द्वारा अपने समाज व अपने देश को आगे ले जाने में भी मददगार सिद्ध होगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह जागरूकता दूर–दूर तक फैले।

रचनात्मक तरीके से पढ़ाने का कोई नियत खाका नहीं है। हमारे चारों ओर जहाँ चुनौतियाँ ही चुनौतियाँ हैं, वहीं उतनी तरकीबें भी हैं। पिटी–पिटायी लीक छोड़कर सोचने से ही तरकीबें सूझती हैं; तरकीबों से रचनात्मकता बढ़ती है; रचनात्मकता से ज्ञान के विभिन्न पहलू जुड़ते हैं; ज्ञान से हम शक्तिशाली बनते हैं।

सीखने व सिखाने को मजेदार और कारगर बनाने के लिए हमारे स्कूल में की गईं कुछ गतिविधियाँ इस प्रकार हैं –

"माया सभ्यता में कैसा था बचपन"

माया सभ्यता का अध्याय पढ़ते समय, पाँचवीं कक्षा के बच्चों को छोटे–छोटे समूहों में बाँटकर उस समय के बचपन के विभिन्न पहलुओं से जुड़े साधारण चित्रों को दर्शाने वाले कार्ड उन्हें दिए गए। कक्षा का हर बच्चा बारी–बारी से माया सभ्यता में पलने वाला 'किम' नामक एक बच्चा बनकर उन कार्डों के क्रम को सही–सही याद

रख पाने की अन्य बच्चों की क्षमता परखता। इस मनोरंजक खेल के चलते सारे बच्चे उन चित्रों से अच्छे से परिचित हो गए। इसके बाद तो वे एक चित्र और उसके ऐतिहासिक वृत्तान्त के बीच का सम्बन्ध तुरन्त समझ लेते थे। तथ्यात्मक जानकारी 'फ्लैप उठाओ' जैसे एक पैटर्न में लिखी रहती थी और एक दृश्य–संकेत के आधार पर बच्चों से उन तथ्यों को याद करके कक्षा में बोलने के लिए कहा जाता। इस तरह यह सारी जानकारी आत्मसात कर लेने के बाद उन्हें यह बात समझ आई कि 2000 साल पहले माया सभ्यता में पल रहे एक बच्चे का जीवन कैसा होता होगा।

अस्सी मिनट में दुनिया की सैर

ताजमहल के ऑडियो गाइड भ्रमण पर अँग्रेजी में बने एक पाठ के विस्तार के बतौर सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों ने

अपने सात समूह बनाकर एक सुनियोजित ऑडियो गाइड भ्रमण की मदद से सारी दुनिया की एक भव्य सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत की। इस झाँकी के निर्माण के पहले चरण में उन्होंने संग्रहालय निदेशकों के व्याख्यान सुने और इन ब्योरों में कैद उनके औपचारिक लहजे एवं तथ्यात्मक वर्णनों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक महाद्वीप की कुछेक महत्वपूर्ण संस्कृतियों के अंशों के आलेख लिखे। इसके बाद, अपने द्वारा तैयार इन सब आलेखों की रिकॉर्डिंग कर उन्होंने, विद्यार्थियों और अध्यापकों के समक्ष इसकी एक प्रस्तुति रखी जिसमें कुछ चार्ट, नक्शे और शिल्प भी शामिल किए गए थे। कक्षा को सात ठिकानों (लोकेशन) वाले एक म्यूजियम की शक्ल दी गई थी। इस ऑडियो गाइड श्रंखला की फौरी शुरुआत के लिए एक जानकारी केन्द्र भी बनाया गया था। इन प्रस्तुतियों को अपने–अपने हेडफोन पर सुन सकने के पहले पर्यटकों को अपने पारपत्रों पर मुहर लगवाने की औपचारिकता भी पूरी करनी पड़ी। उनकी महत्वपूर्ण टिप्पणियों को संकलित कर बाद में उन पर एक चर्चा भी आयोजित की गई। यह रोचक और सुनियोजित उद्यम, उनका अपना मौलिक सृजन था। इस दौरान उन्होंने अपने शोधपरक, आख्यानपरक और संगठनात्मक कौशल माँज लिए थे। उन्होंने तो समझो बाजी ही मार ली थी।

सेल जेली (कोशिका जिलेटिन)

छठी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए पशु कोशिकाओं पर विज्ञान का एक पाठ। विद्यार्थी, इस अवधारणा को बेहतर ढंग

से समझें इसके लिए उनसे पशु कोशिका का एक भोजनीय मॉडल बनाने और खाने के लिए कहा गया। कोशिका का कोशिकाद्रव्य (साइटोप्लाज़्म) दिखाने के लिए उन्होंने पाइनेपल जेली का उपयोग किया, अलग–अलग रंग की

टॉफियों से उन्होंने एण्डोप्लैज़्मिक रिटिक्यूलम (अन्तर्द्रव्यी जालिका), माइटोकोण्ड्रिया (सूत्रकणिका) व गोल्गी उपकरण, बटन के आकार की खट्टी–मीठी गोलियों से राइबोसोम और करीने से कटी नाशपाती से उन्होंने कोशिका–केन्द्रक के बनाया। जाने–पहचाने खाद्य पदार्थों के इस्तेमाल के द्वारा हाथ से की जाने वाली इस गतिविधि के चलते उन्हें विभिन्न कोशिकांगों के नाम आसानी से याद हो गए। यही नहीं, हरेक कोशिकांग की आपेक्षिक साइज और उससे सम्बन्धों का भी उन्हें अच्छा–खासा अनुमान हो चला। सबसे बड़ी बात तो आखिर में अपने इस 'बनाए' को खाने में उन्हें बड़ा आनन्द आया।

शब्दपट्टी

सम्मिश्र शब्दों की जोड़ियों के बारे में छठी कक्षा के बच्चे के ज्ञान को परखने का एक प्रयोगधर्मी खेल।

शब्दों की चुनी हुई जोड़ियाँ विद्यार्थियों द्वारा माथे पर पहनी पट्टियों पर छपी थीं। किसी विद्यार्थी की पट्टी पर लिखे शब्द बाकी सब विद्यार्थियों को तो दिखते थे लेकिन उस विद्यार्थी को नहीं, जिसने उसे अपने माथे पर पहन रखा था। लक्ष्य यह था कि किसी बच्चे द्वारा अपने माथे पर पहने शब्द का पूर्वानुमान लगाने में उसकी मदद की जाए और इसके लिए बाकी बच्चे उसे यथासम्भव संकेत देते जाएँ। जिन–जिन तरीकों से ये संकेत दिए जा रहे थे, उसे देखना एक अद्‌भुत अनुभव था। अब चूँकि सारे बच्चे अपने साथियों की मदद करने के लिए एड़ी चोटी का दम लगा रहे थे, यह सारा खेल एक टीम निर्माण सत्र में तब्दील हो चला। अगले दिन कक्षा में मिले क्रॉम्प्रिहेन्शन पैसेज में ये सारे शब्द पाकर उन्हें एक सुखद आश्चर्य हुआ। यही नहीं उद्धरण पर स्वतंत्र रूप से काम करने का उनमें आत्मविश्वास भी जागा।

स्कूल की इन्ट्रानेट वेबसाइट पर उनकी टीचर, यानी कि मेरे, द्वारा चढ़ाए गए एक वीडियो के जरिए पाँचवीं कक्षा के बच्चों का परिचय 'भिन्नांकों' से करवाया गया। अपने घर पर ही उस वीडियो को देख सकने के चलते हरेक बच्चे को उस वीडियो को कई बार देखने का मौका मिला जिसके चलते भिन्नांक की अवधारणा को वे अच्छे से समझ पाए। उन्होंने अपनी टिप्पणियों और इस पर बनी अपनी समझ की मुझसे व अपने सहपाठियों से ऑनलाइन साझेदारी की। यह तरीका, पाँचवीं कक्षा से लेकर आगे की सारी कक्षाओं के लिए स्कूल द्वारा अपनाई गई 'हवाई कक्षा (फ्लिप्ड क्लासरूम)' पद्धति का एक हिस्सा है, जिसमें, किसी विषय को कक्षा में पढ़ाने से पहले ही शिक्षक, ऑनलाइन ऑडियो/वीडियो/प्रस्तुति के द्वारा अपने विद्यार्थियों का परिचय उसकी अवधारणा से करा देते हैं। नतीजतन, सम्बन्धित विषय पर बातचीत की रूपरेखा पहले ही से स्थापित हो जाती है और प्रारम्भिक से उन्नत का सफर बहुत थोड़े समय में ही तय कर लिया जाता है। परीक्षा के समय इन वीडियो का इस्तेमाल वे रिवीजन के लिए भी करते हैं। इनमें से एक वीडियो यहाँ देखा जा सकता है –

http://www.youtube.com/watch?v=Xa2MFPT3bOo&list=uUUfVik3oDDMYFoYKD2X7rv7Q&index=1

सुधा महेश *'हेडस्टार्ट स्कूल', चेन्नै की संस्थापक हैं। सत्रह साल पहले शुरू हुआ यह स्कूल, अब यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज से सम्बद्ध एच.एल.सी. इण्टरनैशनल के नाम से जाना जाता है और इसकी गिनती चेन्नै के सर्वश्रेष्ठ स्कूलों में होती है। सुधा पिछले 36 सालों से अध्यापन पेशे में हैं, और इस दौरान वे विद्यामन्दिर, चेन्नै, वैली स्कूल व माल्या अदिति इण्टरनैशनल स्कूल, बंगलौर से जुड़ी रही हैं। अध्यापकों के लिए वे अध्यापन के रचनात्मक तरीकों, ई.सी.ई. और गणित पर नियमित रूप से कार्यशालाएँ आयोजित करती रहती हैं। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.के. के लिए उन्होंने गणित की पुस्तकें लिखी हैं। बाल साहित्य के क्षेत्र में भी वे स्कॉलॉस्टिक, तूलिका पब्लिकेशन्स व करडी टेल्स के साथ तथा एक विशेषज्ञ व्यक्ति के बतौर विप्रो के कार्यक्रम 'अप्लाइंग थॉट्स इन एज्यूकेशन' और 'टी.एन. फोर्सेस' के अलावा वे ऑर्गेनाइज़ेशन ऑफ मुस्लिम एज्यूकेश्नल इंस्टिट्यूट्स एसोसिएशन ऑफ तमिलनाडु के साथ जुड़ी रही हैं। उनसे sudha@headstartschool.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।* ***अनुवाद*** *: मनोहर नोतानी*